कृषि अनुसंधान

फोटो: डैनियल मिलर

फसलों की उपज में वृद्धि, आर्थिक विकास तथा गरीबी कम करने के लिए

नई तकनीकों का विकास

डैनियल मिलर तथा क्रिस्टिन ईस्टर

बिना जुताई की बुआई मशीन ने जहां धान के पौधे के पीले ठूंठ काट कर मिट्टी में एक पट्टी-सी बना दी थी, वहां लंबी कतारों में ज़मीन पर हरे रिबनों की तरह गेहूं के पौधे लहलहा रहे हैं। खेत के मालिक और किसान सरनजीत सिंह ने ग्रीष्मकालीन धान की फसल के ठूंठों के बीच उगी गेहूं की फसल की ओर इशारा किया और कहा, ''न केवल जुताई का सिरदर्द दूर हुआ बल्कि मैंने बीजों पर भी कम खर्च किया और 2,500 रूपए प्रति एकड़ के हिसाब से डीजल का पैसा बचा। मैंने पहले की तरह खेत की जुताई नहीं की। इस नई प्रौद्योगिकी से समय भी बचा, फसल बुआई जल्दी हुई और उपज भी अधिक मिली।''

उत्तरी अमेरिका के विशाल मैदानी क्षेत्र में संसाधनों के संरक्षण से जुड़ी भूमि की न्यूनतम जुताई तब से की जा रही है जब हवा के चलते भू कटाव से वह क्षेत्र 'धूल का कटोरा' कहलाने लगा। हज़ारों किसान क्षेत्र छोड़कर चले गए और 1930 के दशक की भयंकर मंदी में भी इसका असर रहा।

हैदराबाद के निकट किसान सूरजमुखी, लौकी और गोभी का उत्पादन कर रहे हैं।

1960 के दशक में 'बिना जुताई' की विधि पर विधिवत गंभीर अनुसंधान शुरू हुआ। आज अमेरिका और यूरोप में यह अच्छी तरह पता है कि 'बिना जुताई' या 'कम जुताई' से मजदूरी तथा ईंधन के खर्च में कमी होती है। अन्य संसाधन संरक्षण तकनीकों जैसे खेतों को लेजर विधि से समतल बनाने और सीधे बीज बो कर किसान पानी, उर्वरक, बीज और समय की बचत करते हैं। धान की पिछली फसल के ठूंठ पलवार का काम करते हैं और जमीन का सही तापमान बनाए रखने के साथ-साथ फसल बढ़ने की अवधि को बढ़ाते हैं। कम जुताई का पर्यावरण की दृष्टि से भी लाभ मिलता है क्योंकि इस विधि के कारण कार्बन वायुमंडल में मुक्त हो जाने के बजाय भूमि में ही बना रहता है।

अमेरिका की अंतरराष्ट्रीय विकास एजेंसी (यूएसएड) धान गेहूं सहायता संघ (कंसोर्शियम) की सहायता से गंगा के मैदानी क्षेत्रों में भारतीय किसानों तक बिना जुताई की खेती तथा कृषि की अन्य नई तकनीकें पहुंचा रही है। यह अंतरराष्ट्रीय कृषि अनुसंधान सलाहकार समूह के कार्यक्रमों में से एक कार्यक्रम है। यह वैश्विक स्तर का सहयोगी समूह है जो दक्षिण एशिया में कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के प्रयोग को बढ़ावा देता है और किसानों की आय बढ़ाने तथा भूमि सुधार में मदद करता है। हरियाणा, पंजाब तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश में किसान इस सहायता संघ द्वारा विकसित कुछ नई तकनीकों को तेज़ी से अपना रहे हैं। वर्ष 2006 तक 5,00,000 से अधिक किसानों को इसका लाभ मिल चुका था।

लाभ की बात बिल्कुल स्पष्ट है। कम मेहनत और अधिक आमदनी का सीधा मतलब यह है कि किसान लेजर की मदद से ज़मीन को चौरस बनाने में लगी 3,500 रुपये की लागत अपनी पहली फसल से वसूल कर सकते हैं। सहायता संघ अन्य संसाधन सुरक्षा तकनीकों के उपयोग को भी बढ़ावा देता है, जैसे उठी हुई क्यारियां, फसल चक्र और मिश्रित खेती, ताकि किसान अधिक उत्पादन कर सकें।

धान गेहूं सहायता संघ (कंसॉर्शियम) बिना जुताई की खेती को बढ़ावा देने के लिए पंजाब कृषि विश्वविद्यालय द्वारा विकसित 'कोम्बो हैपी सीडर' मशीन पर बल दे रहा है। यह मशीन धान के पुआल काट-छांट कर उठा लेती है। परंपरागत विधि में बुआई से पहले जुताई करने के बजाय इस विधि से सीधे ज़मीन में छेद करके बीज बोए जा सकते हैं। उसके बाद मशीन अपने पीछे पुआल को पलवार की तरह बिछा देती है।

भारत में कृषि उत्पादन बढ़ाने और कृषि प्रबंधन को बेहतर बनाने के लिए अनुसंधान के परिणाम किसानों तक कैसे पहुंचाए जा रहे हैं, इसका एक उदाहरण सरनजीत सिंह का खेत है।

कृषि अनुसंधान के क्षेत्र में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी ने 20 वीं सदी के दौरान विश्व भर में कृषि उत्पादन बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। अनुसंधान के कारण मृदा, पोषक तत्व तथा जल-प्रबंधन और नाशक जीवों के नियंत्रण के साथ ही कटाई, भंडारण तथा कृषि उत्पादों के संसाधन के बेहतर तरीकों का भी विकास हुआ। वैज्ञानिक अनुसंधान से कृषि तथा

विकास गरला

अमेरिकी अंतरराष्ट्रीय विकास एजेंसी यूएसएड के भारत कार्यालय के निदेशक जॉर्ज डेकन 12 मार्च 2007 को नई दिल्ली में बाज़ार और किसानों में संपर्क : ग्रामीण भारत में आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए प्रमुख तरीकों का जायजा *विषय पर आयोजित तृतीय सम्मेलन को संबोधित करते हुए।*

प्राकृतिक पारिस्थितिक प्रणालियों के जटिल स्वरूप को बेहतर ढंग से समझने में भी मदद मिली। कृषि इन्हीं प्रणालियों पर निर्भर करती है। इसके कारण पारिस्थितिकीय नियमों पर आधारित कृषि विधियों जैसे बिना जुताई की खेती, के विकास की दिशा में अनुसंधान किया गया।

कृषि में इस नए विकास से विश्व के अधिकांश भागों में पर्याप्त तथा उचित मूल्य पर खाद्य आपूर्ति संभव हुई। उदाहरण के लिए, वैज्ञानिक अनुसंधान से ही 1960 तथा 1970 के दशकों में हरित क्रांति के दौरान भारत में फसलों की उपज बढ़ सकी।

1960 के दशक में भारत में भारी खाद्य संकट पैदा हो गया था और बढ़ती आबादी की ज़रूरतें मुश्किल से ही पूरी हो रही थीं। तब भारतीय वैज्ञानिकों के साथ काम कर रहे अंतरराष्ट्रीय कृषि अनुसंधान संस्थानों के फसल विज्ञानियों ने भारत में गेहूं की अधिक उपज देने वाली किस्मों की खेती शुरू कराई। उन्नत किस्मों और उर्वरकों के भरपूर उपयोग से उपज में बढ़ोतरी हुई। भारत में कृषि का तेज़ गति से विकास हुआ जिसके परिणामस्वरूप 1960 के दशक के शुरूआती वर्षों में जहां गंभीर खाद्य संकट था, वहीं 1990 के दशक की शुरूआत में खाद्यान्न का अतिरिक्त उत्पादन होने लगा, जबकि 1963 और 1993 के बीच आबादी में 40 करोड़ से भी अधिक की वृद्धि हो चुकी थी। कृषि उत्पादन में इस वृद्धि का कारण था सिंचाई, अनुसंधान तथा प्रसार, कृषि ऋणों और कृषक विकास कार्यक्रमों में बड़े पैमाने में निवेश। यह वृद्धि बड़े स्तर वाली आर्थिक नीतियों और बाज़ार विनियमन के बावजूद हुई जिनसे कृषि पर बुरा प्रभाव पड़ा और अब भी इनसे बाधाएं पैदा होती हैं।

यद्यपि उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई लेकिन कृषि तथा प्रौद्योगिकी की नई खोजों का लाभ भारत के सभी

विटामिन-ए से भरपूर सुनहरे चावल

हरित क्रांति के बाद हालांकि भारत खाद्यान्नों के मामले में आत्मनिर्भर हो गया है लेकिन देश के कुल बच्चों में से आधे अब भी कुपोषण के शिकार हैं और 24 लाख बच्चों (विश्व में बच्चों की कुल संख्या का 25 प्रतिशत) की मृत्यु ऐसी बीमारियों के कारण हो जाती है जिनकी रोकथाम हो सकती है या उपचार किया जा सकता है। समुचित पोषण और जन स्वास्थ्य के लिए आयोडीन, विटामिन-ए तथा लोहा जैसे तत्व सूक्ष्म मात्रा में आवश्यक हैं। इनकी सूक्ष्म मात्रा शरीर में एंज़ाइम, हॉर्मोन तथा अन्य पदार्थ बनाने के काम आती है जो शरीर की वृद्धि और विकास के लिए जरूरी है। इनकी कमी से रोग प्रतिरोधिता कम हो जाती है और यह मां तथा शिशु की अस्वस्थता तथा मृत्यु का कारण बनती है।

विश्व भर में अनुमानत: स्कूल जाने से पूर्व की उम्र के 25 करोड़ बच्चे विटामिन-ए की कमी से पीड़ित होते हैं। इसके कारण रतौंधी हो जाती है और अंतत: वे अंधेपन के शिकार हो जाते हैं, शरीर की बढ़त रुक जाती है, श्लेष्मा (म्यूकस) झिल्ली पर बुरा असर पड़ता है और जनन तंत्र भी प्रभावित होता है। बच्चों में विटामिन-ए की कमी से वे साधारण संक्रमणों जैसे दस्त की बीमारी के कारण गंभीर रूप से बीमार पड़ सकते हैं। यहां तक कि उनकी मृत्यु भी हो सकती है। हर साल 2,50,000 से 5,00,000 तक बच्चे विटामिन-ए की कमी के कारण अंधे हो जाते हैं और उनमें से आधे बच्चों की अंधे होने के 12 माह के भीतर मृत्यु हो जाती है।

नियमित भोजन की पोषकता बढ़ाकर गरीब लोगों का पोषण स्तर सुधारा जा सकता है। वे एक ही तरह का स्थायी भोजन करते हैं और संतुलित आहार का खर्च नहीं उठा सकते। चावल ऐसा ही नियमित भोजन है। भारत तथा अन्य एशियाई देशों में प्रति व्यक्ति चावल का अधिक उपभोग किया जाता है। यदि इसकी पोषकता बढ़ा दी जाए तो इससे लाखों लोगों का स्वास्थ्य सुधर सकता है। जैव तकनीक से ऐसी फसलों का विकास करना संभव है, जिनमें पोषक तत्वों की मात्रा अधिक होगी। यूएसएड ने एक अंतरराष्ट्रीय अनुसंधान संस्था हार्वेस्ट प्लस के जरिए भारत में पोषक तत्व बहुल सुनहरे चावल पर अनुसंधान के लिए सहायता प्रदान की है। हार्वेस्ट प्लस विश्व भर में नियमित भोजन की पोषकता बढ़ाकर सूक्ष्म मात्रा वाले तत्वों के कारण होने वाले कुपोषण में कमी करने का प्रयास कर रहा है। इसके तहत भारतीय चावल में बीटा-कैरोटीन का समावेश करके पांच वर्ष के भीतर धान की पोषकतत्व बहुल किस्मों का विकास करके उनको बिक्री के लिए जारी करने का प्रयास किया जा रहा है ताकि भारत में विटामिन-ए की कमी को काफ़ी हद तक दूर किया जा सके।

एरिक हिहे http://www.goldenrice.org

दाएं: गाज़ियाबाद के मटियाला गांव में राइस व्हीट कंसोर्शियम के कृषि अर्थशास्त्री डॉ. ओलॉफ़ एरेंस्टीन मेरठ के क्रॉपिंग सिस्टम्स रिसर्च के परियोजना निदेशक डॉ. एम. एल. जाट और किसान सरनजीत सिंह के साथ बिना जुताई खेती के लाभों पर चर्चा करते हुए।

बिल्कुल दाएं: सेवानिवृत्त कर्नल एस. सी. देसवाल उत्तर प्रदेश में अपने 500 एकड़ के सनशाइन फ़ार्म में गाजर के खेत में। वह सतह को ऊंचा करने जैसे संरक्षण के तौरतरीकों से पानी बचाने और श्रम-लागत को 30 फ़ीसदी तक कम करने में सफ़ल हुए हैं। यही नहीं, फसल की गुणवत्ता भी बढ़ी है।

डैनियल मिलर

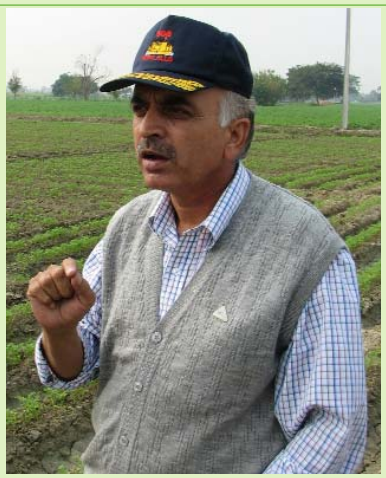

भागों को नहीं मिला। 21 वीं सदी की चुनौती यह है कि नवीनतम खोजों और नए ज्ञान का लाभ सभी लोगों तक पहुंच सके। यह सुनिश्चित करना होगा क्योंकि इसी से आमदनी और खाद्य सुरक्षा तथा पोषण का स्तर बढ़ेगा। भारत में अभी भी करीब 30 करोड़ लोग गरीब हैं। इनमें से अधिकांश लोग ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं और वे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर करते हैं। यहां अधिकांश खाद्यान्नों का उत्पादन स्थानीय स्तर पर ही होता है, इसलिए फसलों की उपज बढ़ाने के साथ-साथ पोषक तत्व बहुल तथा बेहतर कीमत दिलाने वाली फसलों की खेती से लाखों लोगों के स्वास्थ्य और आजीविका में सुधार हो सकेगा।

कृषि अनुसंधान में बड़े पैमाने पर निवेश के बिना गरीबी को कम नहीं किया जा सकता। जिन देशों की कृषि अर्थव्यवस्था मज़बूत है, उन्होंने कृषि विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी में निरंतर और रिकॉर्ड निवेश किया है।

दादरी, उत्तर प्रदेश के खंडेरा गांव के पास किसान बिना जुताई खेती करने के तौरतरीकों से रूबरू हो रहे हैं। इस विधि में हल चलाने की ज़रूरत नहीं रहती।

कृषि अनुसंधान में अमेरिका विश्व में अग्रणी देश है। अमेरिकी कृषि विभाग (यूएसडीए) की चार कृषि अनुसंधान एजेंसियां हैं: कृषि अनुसंधान सेवा (एआरएस), आर्थिक अनुसंधान सेवा, वन सेवा, सहकारी राज्य अनुसंधान, शिक्षा एवं प्रसार सेवा, जो भूमि-अनुदान विश्वविद्यालयों को आर्थिक सहायता प्रदान करती है। कृषि अनुसंधान सेवा में पीएच.डी. स्तर के 2,000 वैज्ञानिक हैं और 100 से अधिक अमेरिकी प्रयोगशालाओं में अनुसंधान किया जाता है। अधिकांश अनुसंधान विश्वविद्यालय तथा उद्योग से जुड़ी संस्थाओं की साझेदारी में किया जाता है और अनेक एआरएस प्रयोगशालाएं भूमि-अनुदान विश्वविद्यालयों में स्थित हैं। विश्वविद्यालयों तथा निजी क्षेत्र के बीच संयुक्त प्रयासों की संख्या भी काफ़ी है।

भारत की सरकारी कृषि अनुसंधान प्रणाली विश्व की बड़ी कृषि प्रणालियों में से एक है जिसका नेतृत्व भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर) द्वारा किया जाता है। भारत की कृषि अनुसंधान प्रणाली में 20,000 से अधिक वैज्ञानिक काम कर रहे हैं जिनमें से लगभग 12,000 पूर्णकालिक वैज्ञानिक हैं जो अनुसंधान में जुटे हुए हैं। विकासशील विश्व में इस स्तर के व्यय तथा व्यावसायिक स्टॉफ की तुलना केवल ब्राजील तथा चीन के साथ की जा सकती है।

शोध के लिए ज़्यादा धन

वैज्ञानिकों की बहुत बड़ी संख्या के बावजूद कृषि अनुसंधान में भारत का निवेश विकसित देशों की तुलना में अब भी आधे से भी कम हैं। 21 वीं सदी में विश्व अर्थव्यवस्था में प्रतिस्पर्धा के लिए भारत को अनुसंधान के लिए और अधिक धन व्यय करना होगा तथा अपनी कृषि अनुसंधान संस्थाओं व प्रसार कार्यक्रमों को अधिक प्रभावी बनाना होगा। जल आपूर्ति में लगातार हो रही कमी को देखते हुए जल-प्रबंधन में सुधार की आवश्यकता होगी और कृषि के लिए पानी के साथ ही बिजली की आपूर्ति हेतु कीमतों में भी संशोधन करना होगा। उच्च कोटि के पशु-उत्पादों और फल-सब्जियों के विपणन के सुअवसरों का भरपूर लाभ उठाने के लिए विपणन और व्यापार की नीतियों को भी उदार बनाना होगा।

भारत में खेती योग्य भूमि का क्षेत्रफल सीमित होने

डैनियल मिलर

यूएसएड की मदद से शुरू किए गए बिना जुताई खेती के तरीके के प्रति किसानों का रुझान बताता है कि वे नई तकनीक अपनाने को तैयार रहते हैं बशर्ते वे जान जाएं कि ये लाभकारी हैं।

क्रिस्टिन ईस्टर

के कारण भविष्य में कृषि उत्पादन में वृद्धि केवल उत्पादकता, लाभप्रदता तथा प्रतिस्पर्धा को बढ़ाकर ही हासिल की जा सकती है। इस प्रकार की वृद्धि तथा भारतीय कृषि उत्पादों की प्रतिस्पर्धा को बढ़ाने के लिए नए तौर-तरीकों की खोज में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की महत्वपूर्ण भूमिका है। साथ ही, संसाधन तथा निवेश आधारित वृद्धि को ज्ञान तथा विज्ञान आधारित वृद्धि में बदलने की ज़रूरत पड़ेगी। इस बदलाव में ज्ञान के प्रसार और नूतन प्रयोग अहम हैं। भारत में बिना जुताई की खेती पर यूएसएड के सहयोग से जो काम किया गया है, उससे पता चलता है कि अगर किसान किसी प्रौद्योगिकी को समझ लेते हैं और उसे देख कर उन्हें लगता है कि उसका लाभ उन्हें मिलेगा तो वे उसे अपनाने को तैयार रहते हैं।

भविष्य पर निगाह

भविष्य में कृषि अधिक जटिल, ज्ञान तथा प्रौद्योगिकी और बाज़ार पर आधारित हो जाएगी। 21 वीं सदी में कृषि पर जैव प्रौद्योगिकी तथा सूचना प्रौद्योगिकी के प्रयोग के साथ ही बाज़ार के वैश्वीकरण, ज्ञान शिक्षा और उपभोक्ताओं की पसंद का सीधा प्रभाव पड़ेगा। प्रतिस्पर्धा के लिए ऐसे बेहतर कृषि उत्पादों की आवश्यकता होगी जो खाद्य सुरक्षा मानकों पर खरे उतरें, पर्यावरण मित्र हों और उच्च गुणवत्ता वाले खाद्य उत्पादों की बढ़ती मांग को पूरा कर सकें। कृषि विकास को खाद्य सुरक्षा तथा प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के बीच संतुलन भी सुनिश्चित करना होगा।

भारत और अमेरिका के वैज्ञानिकों और विश्वविद्यालयों के बीच कृषि संबंधी वर्तमान तथा योजनागत सहयोग से पता चलता है कि ज्ञान-आधारित अनुसंधान और नई प्रौद्योगिकी से भारतीय किसानों को समस्याओं के व्यावहारिक समाधान के रूप में मदद मिलेगी। कृषि में बढ़ते सहयोग और विशेष रूप से भारतीय कृषि में अधिकाधिक निजी निवेश के कारण अन्य लाभ भी मिलेंगे।

भारत में हरित क्रांति के जनक के रूप में विख्यात एम.एस. स्वामीनाथन उपज बढ़ाने के लिए फसलों के आनुवंशिक रूपांतरण का समर्थन करते हैं। ऑर्गेनिक कृषि में काफ़ी रुचि के बावजूद वह कहते हैं, ''आगे की राह जैविक कृषि के संतुलन तथा नई आनुवंशिकी (जेनेटिक्स) पर आधारित प्रजनन की विधियों से प्रशस्त होगी।'' कृषि अनुसंधान की नई सरहदें जैव प्रौद्योगिकी में है और यह शायद 40 वर्ष पहले की स्वामीनाथन द्वारा अधिक उपज देने वाली किस्मों के प्रजनन की ही अगली अवस्था है।

डैनियल मिलर *भारत में अमेरिकी अंतरराष्ट्रीय विकास एजेंसी (यूएसएड) में परियोजना विकास अधिकारी हैं। वह मिनेसोटा के एक फ़ार्म में पले-बढ़े।* ***क्रिस्टिन ईस्टर*** *भारत में यूएसएड की कम्युनिकेशन ऑफ़िसर हैं और उन्हें भारत में रहते लगभग पांच साल हो गए हैं।*

कृपया इस लेख के बारे में अपने विचार editorspan@state.gov पर भेजें।

जीन तकनीक से विकसित बैंगन

आर. ईसाई / www.flickr.com

भारत में बैंगन का उत्पादन पांच लाख हैक्टेयर क्षेत्र में होता है। इसमें से बहुत सा हिस्सा हमलावर कीड़े द्वारा नष्ट कर दिया जाता है और कीटनाशकों के छिड़काव से उत्पाद जहरीला हो जाता है। अमेरिका और भारत के कृषि विश्वविद्यालयों ने ऐसा जीन विकसित किया है जिससे उत्पन्न जीवाणु इस कीड़े के लिए तो जहरीला होता है लेकिन मानव और जानवरों के लिए नहीं।

बैंगन एशिया में उगाई जाने वाली सब्जी की प्रमुख फसल है। भारत में इसे खूब खाया जाता है और इस पर जमकर दवाइयां छिड़की जाती हैं। इसकी खेती 5 लाख हैक्टेयर से भी अधिक क्षेत्रफल में की जाती है। इसलिए कई किसानों के लिए यह नकद आमदनी का मुख्य स्रोत है। दुर्भाग्यवश फल और तना वेधक कीट के प्रकोप से बैंगन के उत्पादन पर बहुत बुरा असर पड़ता है। इस कीट की रोकथाम के लिए किसानों को इस फसल पर खतरनाक दवाइयों का छिड़काव करना पड़ता है (80 बार तक), जिसके कारण उत्पादन लागत बढ़ जाती है और फसल जहरीली हो जाती है। यहां तक कि किसान अपनी फसल के बैंगन स्वयं नहीं खाते।

यूएसएड की आपसी सहयोग की एक विशेष 'कृषि जैव प्रौद्योगिकी सहायता परियोजना-2' के तहत भूमि अनुदान विश्वविद्यालयों, अमेरिका स्थित बीज कंपनियों, भारतीय अनुसंधान संस्थानों, भारत के राज्य स्तर के कृषि विश्वविद्यालयों तथा निजी बीज कंपनियों के साथ बैंगन की कीड़ों के प्रति प्रतिरोधी किस्मों के विकास का प्रयास किया गया है। इस जैव प्रौद्योगिकीय विधि में *बेसिलस थुरिंजेंसिस* यानी बीटी जीन को बैंगन के पौधे में डाला गया है। यह जीवाणुओं (बैक्टीरिया) की एक प्रजाति है जो ऐसी प्रोटीनें बनाते हैं जो बैंगन में लगने वाले कीड़ों के लिए तो जहरीली होती हैं लेकिन मनुष्यों और पशुओं पर उनका कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता। इससे कीटनाशकों के प्रयोग में काफ़ी कमी होगी और कीटों से होने वाली हानि के घटने के कारण उपज बढ़ेगी। इस तरह किसानों की आमदनी भी बढ़ेगी। बीटी बैंगन की खेती करने से कीटनाशकों पर होने वाले खर्च में 50-80 प्रतिशत तक कमी हो सकेगी और प्रति हैक्टेयर 400 डॉलर से अधिक का लाभ होगा।

सरकारी तथा निजी सहभागिता के ऐसे नए मॉडलों से सभी को लाभ मिल सकता है: सरकारी क्षेत्र की नई तकनीकों तक पहुंच बनती है, उत्पाद विकास के लिए निवेश मिलता है जबकि निजी क्षेत्र प्रौद्योगिकी स्वीकृति प्रक्रिया की लागत कम कर सकता है और किसानों को उचित मूल्य पर नए ट्रांसजीनिक बीज मिलते हैं।

बैंगन के आनुवंशिक विधि से रूपांतरित संकर बीज शायद इसी वर्ष बिक्री के लिए जारी किए जाएंगे। इन्हें निजी बीज कंपनियों के जरिए किसानों तक पहुंचाया जाएगा। इस तरह भारत में जैव प्रौद्योगिकी से विकसित खाद्य फसलों की खेती की शुरूआत हो सकेगी। **-डै. मि.**